सप्तम अध्याय

उपसंहार

तबला यह वाद्य लगभग पिछले 400 साल पुराना अवनद्य है, जो सभी भलिभाँति जानते हैं। अर्थात यह वाद्य दिल्ली सलतनत के शासक सुलतान गयासुउद्दीन बलबन (समय काल इ.सा. पूर्व 1249–1286) के दरबार में भी बजाया जाता था ऐसा कई लोगों का अनुमान हैं, किन्तु तबले पर अलग–अलग शास्त्रकारों ने इस विषयपर कई पुस्तके, अनेक ग्रंथ लिखे हुए हैं। इस विषय पर अनेक शोधकार्य किए हुए हैं, शोधार्थी को उसपर भी गहन अध्ययन करने के पश्चात यह दिखाई दिया कि, कुछ बाते सत्य लगने वाली थी, तो कुछ बाते असत्य लगने वाली थी इसपर जादा प्रकाश न डालते हुए मौन रखना ही उचित होगा, किन्तु शोधार्थी ने शोधप्रबंध लिखते समय शास्त्रोक्त तबला वादन पर विचार विमर्श किया तो इतिहास हमें यह बतलाता है की, निश्चित रूप में तबले से पूर्व पखावज यह वाद्य मंदिरों में भजन किर्तन के साथ बजाया जाता था, अपितु कुछ सालों के बाद तबला वाद्य का अविष्कार हुआ। हो सकता है की यह वाद्य भी मंदिरों में उपशास्त्रीय संगीत के लिए प्रयुक्त होने लगा, किन्तु तबले जैसे वाद्य ने 18 वी शताब्दी में अपना प्रबल काम करना शुरू किया। अर्थात, शास्त्रीय तबला वादन पद्धती की शुरूआत इसी शताब्दी में दिखाई देती हैं। शोधार्थी ने अपने दादा गुरू पं. अरविंद मुळगांवकरजी द्वारा लिखित 'तबला' नामक पुस्तक का गहन अभ्यास किया, न केवल लिखित पुस्तकों पर आधारित रहकर अपितु, मुर्धन्य कलाकारों के विचारोंपर भी विचार विमर्श किया। लेकिन तथ्यतों यही सामने आता है की, दिल्ली घराना तबले का सर्वप्रथम घराना माना गया है, अर्थात इसकी शुरूआत 1710 से लेकर 1780 तक मानी गयी थी। इस घराने के प्रवर्तक उ. सिद्धार खाँ ढाढी बतलाए गए है। विचार मन में यह भी आता है कि, दिल्ली घराना एक पितातुल्य घराना रहा है अर्थात, इन मुर्धन्य कलाकारों ने शास्त्रोक्त विधीवत तबला वादन परंपरा कि नींव डाली, फलतः दिल्ली घराने का तबला विकसित होता रहा। अर्थात यह घराना 'आद्य घरानेकी' दृष्टिकोनसे माना गया है। शोधार्थी के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है

कि, स्वतंत्र तबला वादन का क्या अर्थ है? क्या कभी भी, किसी भी रचनाओं को किसी भी क्रम में वादन प्रस्तुत करना, क्या यह एक सही शास्त्रोक्त वादन प्रणाली मानी जाएगी? तो हम सभी लोग भलिभाँति जानते है कि, इसका एक निश्चित क्रम रहा है और वह क्रम बनारस घराने तक चलता रहा, तो इस विषय पर किसी भी प्रकारकी ठोस लेखी जोखी जानकारी प्राप्त नहीं हो पा रही थी अर्थात, जो भी जानकारी उपलब्ध हुयी वह इतनी भी पर्याप्त मात्रा में नहीं थी की जिसका आधार लेकर इन छह घरानों की परंपरा चलती रहे। शोधार्थी के मन में यह विचार आया कि, इन वादन में कुछ रचनाएँ ऐसी है जो विस्तारक्षम रचनाएँ कहलाती है, तो इन्ही रचनाओं को तुलनात्मक दृष्टिकोनसे लिखकर एक ठोस शोधप्रबंध क्यों ना लिखा जाए। अतः सभी घरानों की वादन प्रणाली को सामने रखते हुए यह दृष्टिगोचर होता है कि, स्वतंत्र तबला वादन में विस्तारक्षम रचनाएँ ही महत्वपूर्ण रचनाएँ रही हैं। अर्थात स्वतंत्र तबला वादन में विस्तारक्षम रचनाओं का क्या महत्व रहा हैं? तथा, क्या सभी घरानों की विस्तारक्षम रचनाएँ एकसमान है? किन्तु, इस विषयपर पूर्ण रूप से दृष्टिपात करके, गहन अध्ययन करने के पश्चात जो सत्य लगने वाले तथ्य हैं उसी को ही संग्रहित करके उपसंहार के माध्यम से उजागर करने का एक कष्टसाध्य प्रयास इस शोधग्रंथ में शोधार्थी ने किया हुआ है। इस विषय की मौलिक जानकारी लोगों तक पोहोचने हेतु और स्वतंत्र तबला वादन कैसे किया जाता है? विस्तारक्षम रचनाओं का क्या महत्व रहा है? विस्तारक्षम रचनाओं की जानकारी, उनकी परिभाषा इन सभी को इस शोधप्रबंध में लिखा गया है।

शोधार्थी के पहले अध्याय में 'तबले की ऐतिहासीक पृष्टभूमि' पर चर्चा कि गई हैं। इस विषय में भी सत्य लगने वाले तथ्यों की जितनी जानकारी प्राप्त हो पायी हैं उसे ही देने का प्रयास किया गया हैं। यह देने का मुख्य कारण यही है कि, शोधग्रंथ के मुख्य विषय पर चर्चा करने से पूर्व विषय कि जमीन की जानकारी प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि ठोस शोधप्रबंध लिखा जाए और यही इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है। शोधार्थी ने शोधग्रंथ के द्वितीय अध्याय में विस्तारक्षम रचनाएँ एव उनका स्वरूप इसपर विचारविमर्श किया हैं। शोधार्थी ने स्वयं गुरूमुखी विद्या प्राप्त करके स्वतंत्र तबला वादन की प्रणाली को संभालते हुए, विभिन्न घरानों की रचनाओं को मान सन्मान देते हुए अपनी वादन प्रस्तुति लोगों के सामने रखकर

समाज में एक छोटा सा कलाकार होने का मानसन्मान प्राप्त किया है। इसी कारण शोधार्थी विस्तारक्षम रचनाओं के बारे में भलिभाँति जानता है की, विस्तारक्षम रचना अर्थात ऐसी रचना है जहाँ कलाकार उपज अंग का सहारा लेते हुए मुख्य रचनाओं को विस्तारपूर्वक श्रोताओं के सामने रखता है उसे ही विस्तारक्षम रचना कहते हैं। यहाँ मन में यह प्रश्न उठता है कि, ऐसी विस्तारक्षम रचनाएँ कौन–कौनसी है कि, जिसका विस्तार किया जाता है? तो पेशकार, कायदा, रेला इन रचनाओं को सभी घरानों में विस्तारक्षम रचनाओं का स्थान प्राप्त हैं। अर्थात इनका ही विस्तार किया जाता हैं। शास्त्रोक्त प्रणाली को सामने रखते हुए ऐसी वादन कि प्रस्तुति की जाती है जहाँ श्रोताओं को पता चले की यह विद्या केवल पुस्तक में लिखी हुई विद्या ना होते हुए इसमें कलाकार अपनी वादन प्रस्तुति भी करता है। यहाँ शोधार्थी का ठोस कहना है कि, ऐसे कलाकार की वादन प्रस्तुति हर रोज नई नई सुनाई देती हैं। इस अध्याय में शोधार्थी ने विस्तारक्षम रचनाओं का सही सही अर्थ और रचनाओं के बारे में शास्त्रोक्त जानकारी देने का एक प्रयास किया है। इस अध्याय के माध्यम से यह तथ्य सामने आते है कि, विस्तारक्षम रचनाएँ केवल स्वतंत्र तबला वादन प्रणाली में पेशकार, कायदा एवं रेले में ही होती हैं। यदी मध्यलय को लेकर चले तो वह कतई विस्तारक्षम रचनाएँ नही हो सकती। क्योंकि, मध्यलय में बजनेवाली रचनाएँ जो है उनके जोडे बजाने कि प्रथा रही है, किन्तु वह रचनाएँ विस्तारक्षम कभी भी नही हो पाती हैं। विस्तारक्षम रचनाएँ विशिष्ट जाति पर भी आधारित होती हैं। इस अध्याय में सभी जातियों का अध्ययन शोधार्थी द्वारा किया गया हैं। किसी भी जाति पर आधारित विस्तारक्षम रचनाओं का विस्तार उस जाति के विशिष्ट छंद पर आधारित होता है। शोधार्थी को इसपर यह तथ्य प्राप्त होता है कि, किसी भी रचना कों आप जाति का नाम नहीं दे सकते। कोई भी झपताल का कायदा आप तिनताल में खंड जाति कहकर या फिर रूपक का कोई कायदा उसे मिश्र जाति का नाम देकर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अगर तिस्त्र जाति की विस्तारक्षम रचना हो तो 3–3 का छंद, चतुरस्त्र हो तो 4–4 का छंद, खंड जाति हो तो 2–3 का छंद, मिश्र जाति में 3–4 का छंद आदि द्वारा ही विस्तारक्षम रचनाओं की प्रस्तुति उस जाति के अनुसार ही उचित मानी जाएगी। प्रस्तुत अध्याय में त्रितालेत्तर तालों में विस्तारक्षम रचनाओं का वादन इसपर शोधार्थी को दो प्रकार के तथ्य प्राप्त होते है की जिसमे

कुछ तबला वादकों का विचार है विस्तारक्षम रचना की प्रस्तुति उस ताल के खंड के अनुसार होनी चाहिए, तो कुछ तबला वादकों का विचार है की फर्शबंदी पर आधारित होनी चाहिए। किन्तु इस पर गहन अध्ययन करने के पश्चात शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि, उस ताल के समान चार भाग याने 'फरशबंदी' के अनुसार ही विस्तारक्षम रचना की प्रस्तुति एवं विस्तार होना चाहिए। क्योंकि अगर ताल झपताल के किसी कायदे की रचना खंड के अनुसार जैसे 2–3 के हिसाब से अगर हो भी तो जब उसकी दुगुन की जाएगी तो 2½ मात्रा के समान चार भाग हो जाते है और किसी भी विस्तारक्षम रचना के लिए यह अत्यंत आवश्यक होता है। इसलिए किसी भी विस्तारक्षम रचना में ताल के खंड के अलावा उस रचना का स्वरूप फर्शबंदी पर ही आधारित होता है, ऐसा शौधार्थी का ठोस कहना है।

तृतीय अध्याय में शोधार्थी ने विस्तारक्षम रचनाओं की विस्तार क्रिया पर प्रकाश डालने का एक अत्यंत कष्ट साध्य प्रयास किया है। अतः यह अध्याय शोधार्थी के शोधप्रबंध का मुख्य अध्याय भी रहा है। शोधार्थी ने स्वतंत्र तबला वादन के अंर्तगत प्रस्तुत होनेवाली विस्तारक्षम रचनाओं को देने का केवल एक प्रयास ही नहीं किया, किन्तु उन्हें शास्त्रोक्त पद्धतीसे उसका विस्तार कैसे किया जाए? उसपर भी विचार इस अध्याय में किया हुआ है। अर्थात गणित कि दृष्टिकोनसे रचनाओं को लिपिबद्ध करके, एकत्रित करके उसे उजागर करने का केवल प्रयास ही नहीं किया, अपितु उन रचनाओं की विस्तार पद्धती, विस्तार सौंदर्य, छंद, गणितीय सौंदर्य प्रस्तुति सौंदर्य इसपर भी काफी विचार किया हुआ हैं। अतः ऐसी विस्तारक्षम रचनाएँ की जो विभिन्न कलाकारों के द्वारा उसपर दृष्टिपात किया जाए तो हर कलाकार का अपना विचार सामने प्रस्तुत हो तथा जो रचनाएँ विस्तारक्षम रचनाओं के दृष्टि से उजागर की गयी है वही रचनाएँ एवं इस प्रकार की और कितनी विस्तारक्षम रचनाएँ हो सकती है इसपर भी विचार किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि, जैसे इस से पूर्व शोधार्थी ने यह बतलाया है की विस्तारक्षम रचनाओं के अंतर्गत पेशकार, कायदा, रेला एवं लग्गी, लडी का स्थान आता है तो इन्ही रचनाओं को विभिन्न तालों में लिपीबद्ध करने का एक अत्यंत कष्टसाध्य प्रयास इस अध्याय में किया गया है। इस से समाज में यह पता चले की स्वतंत्र तबला वादन में प्रयुक्त होनेवाली इन

तीनों रचनाओं को आज का तबला वादक अपनी कुशाग्र बद्धी से कितना विस्तार कर सकता है। यदी किसी भी तबला वादक द्वारा इन रचनाओं को लिपीबद्ध करने का प्रयास किया जाए तो हर रोज कि 'उपज' अलग अलग विस्तार बतला सकती हैं। किन्तु शोधार्थी ने जो महत्वपूर्ण विस्तार होनेवाली संज्ञा (Phrases) जिसकी वजह से विस्तार हो सकता है केवल उन्ही (Phrases) को लेकर विस्तारक्षम रचनाओं को लिपीबद्ध करके उजागर करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है। यदी आज तबले का कोई भी विद्यार्थी विस्तारक्षम रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है तो वह केवल शोधप्रबंध का तिसरा अध्याय उठाकर देख ले तो उसका ज्ञानवर्धन हो सकता है अर्थात, उसे कही भी जाने की जरूरत नहीं होगी। इस अध्याय का सार यही है कि, विस्तारक्षम रचनाओं को लिपीबद्ध करके उजागर करना। शोधार्थी ने इस अध्याय में विभिन्न घरानों की गुरूमुख से पायी हुई विद्या की रचनाओं को ही शास्त्रशुद्ध आधार पर लिपीबद्ध करने का प्रयास किया है। केवल उन्हीं रचनाओं को समेटने का प्रयास किया है की, जिनका विस्तार हो सके।

शोधार्थी ने अपने चतुर्थ अध्याय 'विस्तारक्षम रचनाओं की विस्तारक्रिया : सभी घरानों की दृष्टिकोनसे' इसमें तबले के सभी घरानों में प्रस्तुत की जानेवाली विस्तारक्षम रचनाओं के विस्तार पद्धतिपर दृष्टिपात किया हुआ है। शोधार्थी ने अपने तृतीय अध्याय में केवल विस्ताररचना पर प्रकाश डाला हुआ है, किन्तु एक शोध प्रबंध लिखते समय केवल विस्तारपर प्रकाश डालना उचीत नही होगा, क्योकिं किसी भी रचना का विस्तार केवल किसी एक घराने की आमदानी नही है। क्योंकि तबले में छह घराने के बारे में नींव डाली गयी तब यह सिद्ध हुआ की, हर घराने की अपनी अलग वादन परंपरा रही है और उन्ही परंपरा के अनुसार यदि स्वतंत्र तबला वादन पर दृष्टिपात करे तो यह ज्ञात होता है कि, हर घराने की रचनाएँ अलग अलग है तथा हर घराने की विधिवत तबला वादन परंपरा भी अलग अलग है। यहाँ पर एक बात तो साफ होती है कि, स्वतंत्र तबला वादन के छह घराने दो बाजों में बट गये है, अर्थात एक पश्चिम बाज और दुसरा पूरब बाज के नाम से परिचित है। पश्चिम बाज के अंर्तगत दिल्ली और अजराडा घराने की नींव डाली गयी साथ साथ यह दोनों घराने बंद बाज के माने जाते हैं। अर्थात इस घराने में हाथ को जादा न उठाते हुए वादन की प्रस्तुती करना यह स्पष्ट बात दिखाई देती है, इनके विपरीत

पश्चिम बाजों में लखनऊ, फर्रूखाबाद, पंजाब एवं बनारस घराने को माना गया हैं। अर्थात इन चारों घरानों की अपनी विधिवत तबला वादन परंपरा भिन्नभिन्न स्वरूप की दिखाई देती हैं। शोधार्थी को शोधप्रबंध लिखते समय यही शोधकार्य हुआ है की, दो घराने खुले बाज के होते हुए भी केवल हाथों को उठाकर और उँगलियों को फैंलाकार बजाया गया है, किन्तु शोधार्थी ने शोधकार्य करते समय इसबात पर भी ध्यान दिया कि, लखनऊ और बनारस यह दोनो घराने भले ही खुले बाज में आते हो, किन्तु इन दोनों घरानों में 'नचकरन बाज' की छाया दिखाई देती हैं। शोधार्थी ने अपने शोधप्रबंध में छह घराने का जिर्क किया है। यहाँ ठोस विधान लिखते समय खुशी होती है कि, आज भी इन छह की छह घराने के कलाकार जिवीत है तथा उन कलाकारों में से कई मुर्धन्य कलाकारों के साथ साक्षात्कार के रूप में चर्चा विचारना करके हर घराने के विस्तारक्षम रचनाओं को तथा विस्तारक्रिया को लिपीबद्ध करके उजागर करने का शोधार्थी ने एक प्रयास किया हुआ है। केवल मुर्धन्य कलाकारों द्वारा प्राप्त हुयी रचनाओं को ही लिपीबद्ध करना यह शोधार्थी का उद्देश्य नहीं रहा अपितु, ऐसी रचनाएँ की जिनके हर बंदिश पर हस्व–दिर्घ का विचार किया गया हो, व्याकरण का पूर्ण रूप से विचार किया गया हो, रचना सौंदर्य का विचार किया गया हो, वादनप्रणाली का विचार किया गया हो तथा इस अध्याय में क्रमबद्ध वादन प्रणाली क्या होनी चाहीए? इसपर भी पूर्ण रूप से विचार किया गया हैं। यहाँ बात आती है छह घरानों की। शोधार्थी स्वयं फर्रूखाबाद घराने का एक छोटासा कलाकार होते हुए भी बाकी के अन्य घरानो को कम न समझते हुए हर घरानों को उतना ही महत्व दिया की जितना फर्रूखाबाद घराने को दिया है। दिल्ली घराने पर विचार किया जाए तो दिल्ली में चतुरश्र जाति का प्रभाव उनके वादन में अधिक दिखाई देता है, किन्तु पं. सुधीर माईणकर जी जैसे मुर्धन्य कलाकारों के साथ इसपर साक्षात्कार करके दिल्ली घराने में तिस्त्र जाति की रचनाओं पर भी शोधार्थी ने विचार करके उसे भी उजागर करने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय द्वारा किया हुआ है। दिल्ली घराने में छंदो का विचार किया गया हैं। किसी भी विस्तारक्षम रचना की किसप्रकार बढत की जाए इसपर भी विचार किया गया है, वृत्त के बारे में भी विचार किया गया है, स्वरमय तबला वादन प्रस्तुत कैसी हो, तबला वादक को अपने वादन में मिठास के उपर भी किस प्रकार ध्यान देना

चाहीए? इन सभी बातों पर शोधार्थी ने अपना शोधप्रबंध लिखते समय पूर्ण रूप से गहन अध्ययन करके ऐसी रचनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि, उन रचनाओं में केवल दिल्ली घराने की ही छाप दिखाई दे।

इस अध्याय में शोधार्थी को यह परिलक्षीत होता है कि, आज तबला वाद्य का जो वर्तमान स्वरूप है या वादन सामग्री का जो विकास हुआ है वह केवल इन घरानों की एवं घरानो के इन विदवान कलाकारों ने इन रचनाओं को तैयार करने के लिए दिया हुआ योगदान कभी भी भुलाया नही जा सकता। एकल वादन मे तबले के छह घरानों ने इन विस्तारक्षम रचनाओं को बजाने का तरीका, इसे प्रस्तुत करने का ढंग अलग है, विस्तार के बारे में अलग अलग सोच विचार है, जो इन घरानेदार विस्तारक्षम रचनाओं के विस्तार द्वारा आज हमें दिखाई देता है। इसलिए इस अध्याय में प्राचीन एवं पारंपारिक बंदिशो को लिपिबद्ध करके इन दुर्लभ बंदिशो को सर्व सुलभ करने का शोधार्थी ने प्रयास किया हुआ है। साथ ही वर्तमान में कुछ विद्वान कलाकारों से प्राप्त विस्तारक्षम रचनाओं को इस अध्याय में समाविष्ट किया हुआ है जिससे भविष्य में आने वाले तबले के साधक इसका लाभ उठा सके और इससे इन विद्यार्थीयों को ये रचनाएँ सुलभता से प्राप्त हो।

शोधार्थी ने तबले के दिल्ली घराने पर विस्तारक्षम रचना एवं उसकी विस्तार क्रिया इस पर चर्चा करने के पश्चात तबले का दुसरा घराना अजराडा घराना इसपर दृष्टिपात किया हुआ हैं। इस घराने के मुर्धन्य कलाकारों के साथ चर्चा करने के बाद शोधार्थी इस निष्कर्ष पर आता है कि, यह घराना भी तबले के बंद बाज में आता हैं, अर्थात पश्चिम बाज में आता है। वैसे दिल्ली घराने के साथ इस घराने पर विचार विमर्श करने के पश्चात स्वतंत्र तबला वादन प्रणाली में इस घराने में भी पेशकार, पेशकार–कायदा, कायदों के विभिन्न प्रकार (जाति अनुसार, छंदानुसार, लयकारीयुक्त, सौंदर्ययुक्त) सभी रचनाओं को विस्तारक्षम दृष्टि से माना गया हैं। अजराडा घराने की विशेषता रही है कि, इस घराने के कायदे रेले जब भी बजाये जाते है तभी एक विशेष प्रकार का विस्तार इस में दिखाई देता हैं। कायदे की बात करे तो पलटा, बल, इकाई, पेंच, कुल्फी यह लगाने की परंपरा केवल इसी घराने में रही है। अतः अजराडे का कायदा सुनते समय एक विशेष प्रकार का आनंद मिलता है। केवल कायदे पर दृष्टिपात करे तो यह बात स्पष्ट होती है कि, गुरूमुखी विद्या

प्राप्त किए हुए अजराडा घराने के कलाकार यदि कायदे की शुरूआत तिस्त्र जाति से करते है तो उनकी चतुरस्त्र तथा तिस्त्र की दुगुन करके ही कायदे का विस्तार किया जाता है। यदी कायदे की चतुरस्त्र जाति में शुरूआत की जाए तो उस कायदे की तिस्त्र करके चतुरस्त्र की दुगुन की जाती है, उसके पश्चात विस्तार किया जाता है। यह करते समय कभी कभी एक विशेष प्रकारकी रचनाएँ पेश की जाती है अर्थात, कुछ फ्रेजीस लगाई जाती हैं। शोधार्थी ने इस घराने पर अधिक अध्ययन करने के पश्चात मन में एक और बात स्पष्ट हुई कि, इस घराने में अवग्रह का विचार अधिक किया गया हैं तथा आड मात्राएँ अर्थात साडेचार, साडेतीन का भी हिसाब केवल इसी घराने में दिखाई देता है। इन सभी बातों की पुष्टी की जाए तो उ. हबीबुद्दीन खाँ साहब का तबला वादन ही पर्याप्त हैं। इस घराने पर और बातों पर दृष्टिपात किया जाए तो यह बात स्पष्ट होती है कि, कायदे बजाते समय केवल खाली का एक अलग विचार दिखाई देता है। हो सकता है केवल इस वजह से ही दिल्ली से हटकर अजराडे के तबले की छाप अलग दिखाई देती हो। शोधार्थी ने और भी गहन अध्ययन करने के पश्चात एक बात तो स्पष्ट होती है कि, अजराडा घराने के तबले में केवल गणितीय सौंदर्य ना दिखते हुए विस्तार सौंदर्य, सौंदर्यप्रधान सौंदर्य, छंद प्रधान सौंदर्य एक विशेष प्रकार से दिखाई देती है।

फर्रूखाबाद घराने का तबला यह खुले बाज के अंतर्गत होने के नाते इस घराने की विस्तारक्रिया अलग दृष्टि से पायी जाती हैं। दिल्ली और अजराडे की तुलना में इस घराने की विस्तारक्षम रचनाओं का विधिवत क्रम कुछ अलग नहीं दिखाई देता हैं। क्रम तो वही है, लेकिन स्याही के बोलों का गुँजयुक्त, स्वरमय और सौंदर्य पर प्रकाश डालते हुए इस घराने में पेशकार, कायदे एवं रेले में विस्तार किया जाता हैं। यदि इस बात की पुष्टी करे तो कहीं मुर्धन्य कलाकार इस घराने में हो चुके हैं की, सभी कलाकारों को सन्मानित करते हुए फर्रूखाबाद घराने का विस्तार छंदो के साथ अधिक दिखाई देता हैं। इस घराने की विस्तारक्षम रचनाओं में छोटी छोटी रचनाएँ स्वतंत्र तबला वादन में पेश करने वाले तबला वादक को अमर बना देती है। अर्थात इसकी पुष्टी की जाएँ तो पुराने तबला वादकों में उस्ताद अहमदजान थिरकवाँ सहाब, उ. अमिरहुसेन खाँ सहाब, उ. शेख दाऊद, उ. जहांगीर खाँ, उ. हाजी विलायतअली सहाब जैसे महान कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा

हैं। इस शताब्दी के अर्तगत प्रकाश डाले तो पं. अनिन्दो चटर्जी, पं. नयन घोष, पं. भाई गायतोंडे पं. अरविंद मुळगांवकर सहाब जैसे अनेक महान कलाकारों में यह बाज स्पष्ट रूपसे दिखाई देती हैं। किन्तु शोधार्थी ने और गहन अध्ययन किया तो शोधार्थी के मन में एक बात स्पष्ट हुई कि, फर्रूखाबाद में विस्तारक्षम रचनाओं में विस्तारक्षम रचनाओं से अधिक मध्यलय में बजनेवाली रचनाओं पर अधिक विचार किया गया है।

लखनऊ घराने की बात करे तो इस घराने में भी विधिवत क्रम में कोई परिवर्तन नही दिखाई देता है, किन्तु उनके विस्तार में काफी अंतर दिखाई देता हैं। हो सकता है की, इस घराने के वादनपर पखावज अंग की छाप होने के कारण और शब्दों की पुनरावृत्ती होने के कारण, 'गद्दिं' के बोलों का समावेश होने के कारण इस में विस्तार कुछ अलग ढंग से दिखाई देता हैं। कभी कभी तो यह तबला नृत्य के साथ बज रहा है ऐसा महसूस होता हैं। शोधार्थी ने इस बात की पुष्ट करने का प्रयास किया है कि, लखनऊ का तबला 'नचकरन बाज' माना गया है। लखनऊ घराने में आज बहुत कम कलाकार जिवीत हैं। अपितु, उनमें से जिन कलाकारों के साथ साक्षात्कार हो पाया ऐसे कलाकारों के साथ चर्चा विमर्श करके शोधार्थी ने केवल अपने शोधप्रबंध में लिखने के कारण ही नहीं, किन्तु अपना ज्ञानवर्धन करने के लिए भी इस घराने का अभ्यास करने का एक कष्टसाध्य प्रयास किया हैं। शोधार्थी को पुराने उस्तादों के रेकार्ड सुनने के पश्चात उपर दी हुई जानकारी की पुष्टी मिलती हैं।

पंजाब घराने की बात करे तो एक बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि, इस घराने पर पं. लाला भवानीदास की पखावज की पूर्ण रूप से छाप दिखाई देती है। पखावज जैसे वाद्य को बजाने के लिए ताकत की जरूरत पडती है। हो सकता है यह बाज खुले बाज में होने के कारण जोरदारयुक्त और ताकदयुक्त रहा हो। कहा जाता है कि, पंजाब के गेहूँ में और खडी बोली में जो ताकद है वही ताकद इस घराने के तबले में भी दिखाई देती है। रही बात विस्तारक्षम रचनाओं की, या विस्तारक्षम क्रम की तो विधिवत क्रम में किसी भी प्रकार का बदलाव न करते हुए केवल विस्तारक्रिया पर इस घराने के मुर्धन्य कलाकार उ. अल्लारखाँ खाँ सहाब ने अपना खुब विचार किया है। यह परंपरा उनके पुत्रो में तथा उनके शागीर्दो में आज

भी दिर्खाइ देती हैं। हर मात्रा पर विचार करना यह पंजाब की एक महत्वपूर्ण देन रही हैं, जो आज पं. योगेश समसी, उ. झाकिर हुसेन सहाब तथा उ. अल्लारखाँ सहाब की वादन में दिखाई देता हैं। शोधार्थी ने इस बात पर भी विचार किया की इस घराने का तबला केवल सुनकर हासिल होने वाला तबला नहीं है, अपितु जब तक गुरूमुखी विद्या प्राप्त ना करे तब तक इस घराने की रचनाएँ, उसका सौदर्य, उसके निकास, उसका वजन, उसका प्रस्तुतिकरन, दाएँ और बाएँ का संतुलन, पेश करने की विधि यह कठिन साबित हो सकती हैं। आज के पृष्ठभूमि पर जो भी कलाकार जीवीत है, वो इस बात की पुष्टी करने में सच्चे कलाकार का मान सन्मान प्राप्त कर चुके हैं।

तबले के घरानो में छटवा घराना तथा अंतिम घराना बनारस घराना माना गया है। बाकी के पाँच घरानों की यदी विधिवत तबला वादन परंपरा भले एक ही रही हो, किन्तु इस घराने के स्वतंत्र तबला वादन पेश करने की पद्धती कुछ अलग रही है। जिस प्रकार से पाँचो घरानों में विस्तार रचनाओं में सर्वप्रथम स्थान पेशकार का रहा है, किन्तु बनारस घराने में पेशकार की जगह पर चलन या बाँट बजाया जाता हैं। इसकी बढत बहोत ही सौंदर्यप्रधान होती हैं तथा, यदि इसे सही ढंग से पेश किया जाएँ तो यही रचनाएँ और कर्णप्रिय लगती हैं। शोधार्थी के मन में प्रश्न उठता है कि, क्या पंजाब घराने में बढत बनारस के समान नहीं की जाती? तो पंजाब घराने के लोग भी केवल पेशकार बजाते समय ही उसकी अनुभूती करवाते है। बनारस घराने के पुर्वजो में पं. अनोखेलाल मिश्रा, पं. सामताप्रसाद, पं. कंठे महाराज, पं. किशन महाराज, पं. भैरवप्रसाद जैसे मुर्धन्य कलाकार भले ही आज जिवीत ना हो, किन्तु उनके वादन में इसकी पुष्टि अवश्य होती हैं। कभी कभी तो इन पुराने कलाकारों में छंद और कवित्त को लेकर विस्तार करने की प्रणाली रही है। शोधार्थी ने आधुनिक युग के तबला वादकों में जो कलाकार जिवीत हैं उनका तबला वादन प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सुना तथा शोधार्थी ने अपना विचार रखने का एक प्रयास किया हैं कि, बनारस घराने के कलाकारों में जो चलन बजाने की पद्धती है उसमें कभी कभी परिवर्तन न दिखते हुए पुनरावृत्ती का आभास होता हैं। हो सकता है इस घराने की प्रणाली यही रही हो और इसी नई प्रणाली को लोगों के सामने प्रस्तुत करके ही आज बनारस घराना श्रेष्ठ घराना माना गया हैं। इस घराने

के विस्तारक्षम रचनाओं पर अधिक दृष्टिपात करे तो इन घराने के कलाकारों का कल बाएँ की और अधिक दिखाई देता हैं। इस घराने का बायाँ एक विशेष प्रकार से गुँजता रहता है। आज के कलाकार केवल बाएँ पर काम करके उसे उजागर करने का एक प्रयास कर रहे है। सौंदर्य पर दृष्टिपात करे तो यह सुनने में तो बडा अच्छा लगता है, किन्तु इसकी समय की सीमा हो तो सौंदर्य अपने आप जिवीत रहेगा। अंत में शोधार्थी का कहना इतना ही है कि, हर घराने की वादन प्रणाली भले ही एक समान हो, किन्तु उनकी रचनाओं में भिन्नता दिखाई देती हैं और इन्ही भिन्नताओं के कारण हर घराना श्रेष्ठ साबीत भी हुआ है और सौंदर्यप्रधान भी रहा हैं। भारतवर्ष में होनेवाले तबला महोत्सव में या घराना संम्मेलनो में ईसकी पुष्टी अवश्य होती हैं।

शोधार्थी ने पिछले अध्याय में हर घराने की विधिवत तबला वादन परंपरा नुसार विस्तारक्षम रचनाओं का संपूर्ण रूप से अभ्यास करके क्रमशः रचनाओं की विस्तार क्रिया को उजागर करने का प्रयास किया हैं। घरानों के विस्तारक्षम रचनाओं का गहन अध्ययन करने के पश्चात शोधार्थी के मन में एक प्रश्न यह भी आया कि, केवल विस्तारक्षम रचनाओं को लिपीबद्ध करके क्या संतुष्टी मानी जाए? या उनमें रहा हुआ तुलनात्मक अध्यायन पर भी विचार विमर्श किया जाए? अतः शोधप्रबंध यह 'विस्तारक्षम रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन' इसपर आधारित है, क्यों ना इसकी शुरूआत ही विधिवत तबला वादन परंपरा के नुसार पेशकार से ही की जाए। इस विषय पर लिखने से पूर्व शोधार्थी ने सर्वप्रथम पेशकार के संज्ञा के बारे में विचार किया, तद्पश्चात छह की छह घरानों के पेशकारों को भलिभाँति जानने का प्रयास किया। इसका फायदा यह हुआ कि, एक तो हर घराने के पेशकार के प्रति जानकारी प्राप्त हुई, रचनाएँ प्राप्त हुयी, तद्पश्चात शोधार्थी का भी ज्ञानवर्धन हुआ। शोधार्थी के मन में यह भी प्रश्न उठता है कि, हर घराने के पेशकार में क्या समानता है? एवम क्या भिन्नता पायी गयी है? इस प्रश्न का जवाब पहले ही पाँचवे अध्याय में रचनाओं को सोदाहरण के तौरपर देकर प्रयास किया गया हैं, मात्र तृतिय एवं चतुर्थ अध्याय में इसकी पुष्टी की गयी है। पेशकार के बारे में आज भी अनेक मत मतांतर पाये जाते हैं। यदि दिल्ली घराना और बाकी के अन्य घरानों में जो समानता दिखाई देती है वह अधिकतर चतुरश्र जाति में दिखाई देती है। तद्पश्चात

कभी कभी पेशकार वादन में केवल दो उँगलियों का प्रयोग करके 'तिरकिट' बजाया गया। दिल्ली छोडकर अन्य घरानों में 'तिटघिडाऽन' की, जगह पर 'तित् घिडान' शब्द का प्रयोग किया गया। कभी कभी 'किडनग' शब्द का प्रयोग न करते हुए खाली–भरी का विचार किया गया। पेशकार का अर्थ ही यही बतलाता है की, स्वतंत्र तबला वादन में प्रयुक्त होनेवाले सभी वर्णों को एकत्रित करके खाली–भरी का विचार करके बनाई गयी रचनाएँ अर्थात उसे ही पेशकार की संज्ञा दी गयी है। दिल्ली और अजराडा छोडकर बाकी के घरानों में सव्वा और पौने दो का विचार किया गया जो स्वतंत्र तबला वादन की एक महत्वपूर्ण रचनाएँ है, या सौंदर्यप्रधान रचनाएँ है जिसे कलाकार बहुत ही खुबसुरती के साथ प्रस्तुत करता हैं। पेशकार इस रचना में दिल्ली और अजराडा घराने में महत्वपूर्ण फ्रेजेस् लगाकर पेशकार–कायदा द्वारा इसका विस्तार करने का क्रम रहा हैं जिसकी पुष्टी करे तो उस्ताद लतीफ हुसेन खाँ सहाब, उस्ताद इनाम अली खाँ सहाब जैसे मुर्धन्य कलाकारों के वादन में दिखाई देता हैं। पेशकार–कायदा का अर्थ ही यह बतलाता है कि, जिस रचनामें पेशकार एवं कायदे की रचनाओं का मिश्रण हो उसी को ही 'पेशकार–कायदा' कहते है। यह रचना मुख्यतः दिल्ली और अजराडा घराने की महत्वपूर्ण देन रही है, अपितु शोधार्थी के मन में छह की छह घराने का अभ्यास करने का ठाण ही लिया था तो एक सत्य घटना की पुष्टी हुई की पंजाब घराने के मुर्धन्य कलाकार पेशकार–कायदे की रचना अपने स्वतंत्र तबला वादन में आज भी बजाते हैं। अर्थात अजराडा घराने के मुर्धन्य कलाकार उस्ताद हबीबुद्दिन खाँ सहाब ने जो विचार रखा है इससे भिन्न विचार पंजाब घराने के आज के तबला वादकों में दिखाई देता हैं। दिल्ली के उस्ताद इनामअली खाँ सहाब के वादन में जो पेशकार–कायदा दिखाई देता है उससे हटकर उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ सहाब द्वारा साडेचार, साडेतीन का हिसाब रखनेवाला पेशकार–कायदा अजराडा घराने की विशेष पहचान रही हैं। पेशकार कायदे की बढत करते समय उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ सहाब के वादन पर दृष्टिपात करे तो इकाई, पेंच, एवं कुल्फी का प्रयोग केवल अजराडा घराने में किया जाता हैं। जो विचार किसी अन्य घरानो में नही हुआ है, इसका अर्थ यह नही हैं की बाकी के घरानों का तबला कमजोर हैं। पेशकार–कायदे की महत्वपूर्ण रचना को बजाने के लिए उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ सहाब कहते थे की,

यह तबला एक तो तबलियों के लिए तबला बना है। यह नामुराद तबला है, पेशकारा–कायदा यह तबला वादक का इज्जत निकालने वाला कायदा हैं। अर्थात, कहने का तात्पर्य यही है कि, ऐसे साडेचार, साडेतीन का कायदा बजाना और ईसे पेलना तथा विस्तारपूर्वक बहुत खुब सुरतीसे निभाना यह तबला वादक के लिए सबसे कठिन काम हैं।

स्वतंत्र तबला वादन के अन्तर्गत कायदा यह रचना एक महत्वपूर्ण रचना मानी गई है। केवल यही रचना स्वतंत्र तबला वादन में ह्रदय का स्थान लेती है। अपितु कायदे हर घराने में होते है इसी रचना के माध्यम से स्वतंत्र तबला वादक की अपनी एक पहचान होती है और उसी से ही पता चलता है की तबला वादक ने अपने किन किन घरानों की तालीम प्राप्त की हुयी है। शोधार्थी ने क्रियात्मक पक्ष को लेकर, शास्त्रपक्ष को जोडकर इसकी पुष्टी पिछली अध्यायों में कि है जिसे विद्यार्थी, शिक्षक, तबला वादक तथा संगीत प्रेमी इसे पढकर अपना ज्ञान वर्धन कर सकते हैं। रही बात तुलनात्मक अध्ययन कि, परिभाषा यह कहती है की ढंग, नियम और पद्धतीसे बजनेवाली रचना को 'कायदा' कहते है। इस रचना में तबला वादक अपने अभ्यास अनुसार सभी वर्णों का प्रयोग करता है। कुछ शब्द बार बार विभिन्न मात्राओं के अर्न्तगत पुनरावर्तीत किये जाते है तो कही शब्द जोड के रूप में लिए जाते है। इन शब्दों को खाली–भरी का विचार करके ताल के खंडानुसार विभाजित किया जाता हैं। यहाँ पर प्रत्यक्ष रूपसे हर घराने की तुलना करना उचित न समजते हुए जो महत्वपूर्ण बाब रही है उसीपर ही प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अतः एक बात तो स्पष्ट होती है की, कायदे में तिंना, तिंनाकिना, धिंनागिना, तिनतिंनाकिना, धिंनधिनागिन जैसे वर्ण खाली–भरी में होते है, केवल तबला वादक इस बात का ध्यान रखता है कि, इसका विस्तार हो सके। शोधार्थी इस उपसंहार में पहले ही कह चुका है कि, इसकी पुष्टी विभिन्न अध्यायों में की गयी है। अतः किसी के मन में कोई प्रश्न उठता है तो वह इससे पूर्व के अध्याय को भलिभाँति जान ले तो उसकी संतुष्टी भी हो और ज्ञानवर्धन भी हो। इस प्रकार से पाँचवे अध्याय में कायदा एक विस्तारक्षम रचना के अर्न्तगत अपना विशेष स्थान रखता है। एक बात तो स्पष्ट होती है कि, पेशकार में विस्तार करते समय उपज

अंग से जितने नियमों का पालन नहीं किया जाता है उसके विपरीत कायदो में दिखाई देता है।

शोधार्थी ने तुलनात्मक दृष्टि से विस्तारक्षम रचनाओं के अन्र्तगत जिस प्रकार से पेशकार, पेशकार–कायदा, कायदेपर जो विचार किया है वही विचार रेले के लिए भी किया है। अर्थात शोधार्थी स्वयं एक तबला वादक होने के नाते इतनी अनुभूति तो कर चुका है की कायदे की अपेक्षा रेले का स्थान अधिक है और रेला अधिक तैयारी से बजाया जाता है। विस्तारक्षम रचनाओं के बारे में शोधार्थी का अपना विचार है कि, कायदे की अपेक्षा में रेले का विस्तार कम दिखाई देता है उसका मुख्य कारण एक यह भी है की, कायदो में विभिन्न अक्षरों का प्रयोग किया जाता है तो रेले में एक ही अक्षर की पुनरावृत्ती होती है। इसी कारण रेले का विस्तार कायदे की तुलना कम दिखाई देता है तथा इस रचना को थोडीसी लय बढाकर बजाया जाता है।

शोधार्थी ने पाँचवे अध्याय में विस्तारक्षम रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर विवेचन किया हुआ है। परन्तु विस्तारक्षम रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते समय शोधार्थी को और एक चीज दृष्टिपात हुई की, स्वतंत्र तबला वादन में बजायी जानेवाली पेशकार, कायदा, रेला, लडी, लग्गी आदि विस्तारक्षम रचनाओं का महत्व केवल एकल वादन के लिए ही मर्यादीत ना होकर साथ संगत के लिए भी उतना ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण रहा हैं। शोधार्थी ने इस शोधग्रंथ के छटे अध्याय 'साथसंगत में विस्तारक्षम रचनाओं का स्थान' इस में गायन, वादन व नृत्य इन तीनों विधाओं पर विस्तृत चर्चा की हुई हैं। शोधार्थी ने कई विद्वान तबलावादकों की साथ संगत सुनने और देखने के पश्चात तथा अनेक विद्वान तबला वादक, गायक, वाद्यवादक, नर्तक इनसे साथसंगत के बारे में चर्चा करके तथा उनसे साक्षात्कार करने के पश्चात शोधार्थी को यह तथ्य प्राप्त हुआ कि, शास्त्रीय गायन में तबला वादक को स्वतंत्र वादन करने की आवश्यकता नही होती, केवल ठेका वादन भी उसमें पर्याप्त होता है। उपशास्त्रीय संगीत या सुगम संगीत में केवल लग्गी या लडी जैसी विस्तारक्षम रचनाओं का ही प्रयोग तबला संगतकार करता है, लेकिन उसका लग्गी, लडी का विस्तार केवल लौटपलट करने तक ही सिमीत होता है। तबला संगतकार को गायक द्वारा जब बजाने के लिए मोका दिया जाता है तब उसे बहुत

कम आवर्तन बजाने के लिए प्राप्त होते है, जिसकी वजह से वादक इन रचनाओं का विस्तार नही कर पाता है और इनका विस्तार दो–तीन पलटों में ही लुप्त हो जाता है। इनका विस्तार केवल गायन के अनुरूप और आवश्यकता अनुसार ठेके द्वारा साथ संगत करना इतना ही होता हैं। वाद्यसंगीत को साथ संगत करनेवाले तबला संगतकार के पास स्वतंत्र वादन करने की महारथ होनी आवश्यक होती है, विलंबित लय से लेकर अणु द्रुत लय तक बजाने के लिए लय का उत्तम ज्ञान उसके पास होना चाहिए। तबला संगतकार के पास प्रमुख वाद्यसंगीत कलाकार को सुनने का, सोचने का समय होता है और जब तंत्कार तबला वादक को बजाने की छुट देता है तब तबला संगतकार प्रस्तुत कलाकार के अनुरूप संगत कर सकता है। अपने वादन में विस्तारक्षम रचना पेशकार, कायदा, रेला, लग्गी, लडी आदि रचनाओं के माध्यम से तंत्कार के अनुरूप उचित संगत कर सकता है। नृत्य की संगति करते समय नृत्य में आमद एवं तत्कार जैसी रचनाओं को प्रस्तुत किया जाता है, ठीक उसी प्रकार से तबला वादक इन तीनो रचनाओं में नृत्य के बोलों को तबले पर हूबहू निकालने का प्रयास करता हैं। अतः ऐसी संगति करते समय तबला वादक को सर्वप्रथम उसे भलिभाँति जानना जरूरी होता है, तभी उन थाटों को वह प्रस्तुत कर सकता है, अन्यथा इस प्रकार न करने से तबला वादक इन छोटी छोटी रचनाओं के साथ भी संगति करने में असफल हो सकता है।

अंत में इस तरह शोधार्थीने अपने शोधप्रबंध के छह अध्यायों में स्वतंत्र तबला वादन की विधिवत परंपरा के अन्तर्गत आनेवाली विस्तारक्षम रचनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी देने का एक अत्यंत कष्टसाध्य प्रयास किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि, तबले की विस्तारक्षम रचनाओं का स्वतंत्र तबला वादन के साथ ही साथसंगत में भी प्रयोग किया गया। विस्तारक्षम रचनाओं का अभ्यास केवल गुरूमुखी विद्या प्राप्त किया हुआ कलाकार ही इन रचनाओं का क्रमशः विस्तार कर सकता है तथा समाज में एक उत्तम साथसंगत का मानसन्मान प्राप्त कर सकता हैं। पेशकार, पेशकार–कायदा, कायदा, रेला तथा लग्गी लडी यह विस्तारक्षम रचनाएँ एकल वादन की एक महत्वपूर्ण रचनाएँ मानी गयी है।

तबला इस सर्वश्रेष्ठ 'लय–ताल–नाद' अवनद्ध वाद्य की श्रेष्ठता उसमें निहित सौदंर्यात्मक संकल्पनाओं के सूक्ष्म अध्ययन में होती हैं। इन विविध संकल्पनाओं में

विस्तारक्षम एवं अविस्तारक्षम रचनाएँ यानी पूर्व संकल्पित रचना प्रकारों का समावेश होता हैं। तबला इस वाद्य की श्रेष्ठता विशेषतौर पर विस्तारक्षम रचना प्रकारोंपर ही आधरीत होती हैं और इन विस्तारक्षम रचनाओं का सौंदर्यतत्व होता हैं 'विस्तार प्रक्रिया', जिसे ताल का दशम प्राणतत्व यानी 'प्रस्तार ' कहा जाता हैं। तबला यह एकमेव ऐसा तालवाद्य हैं, जिसमें पेशकार, कायदा, रेला जैसी महत्वपूर्ण एवं सौदर्यपूर्ण रचना प्रकारों का अंर्तभाव होता हैं। विस्तारक्षम रचनाओं का यह महत्वपूर्ण अंग ही तबले का प्राणतत्व बन गया हैं और तबले ने अपना अलग ही अस्तित्व एवं श्रेष्ठत्व प्राप्त किया हुआ हैं, अन्य किसी भी तालवाद्य की तुलना में तबले की यह एक विशेष प्राप्ती एवं गौरव हैं, ऐसा कहना सर्वोपरि उचित होगा, ऐसा शोधार्थी का विश्वास हैं।

एकल तबला वादन प्रस्तुति में वादन का महत्वपूर्ण पूर्वांग होता हैं, 'विस्तारक्षमर रचनाओं का प्रस्तुतिकरण' और 'उत्तरांग' होता हैं 'पूर्वसंकल्पित रचनाओं का प्रस्तुतिकरण'। अपितु, इस महत्वपूर्ण पूर्वांग प्रस्तुति की तबला वादन प्रस्तुति में बडी ही एहम् भूमिका रहती हैं और यह शास्त्रीय तबला वादन की एक अलग पहचान भी होती हैं। स्वतंत्र तबलावादन में इन विस्तारक्षम रचनाओं की प्रस्तुति का स्थान एवं महत्व अनन्य साधारण होता हैं। तबला वादन एक प्रयोगशील कला है और इस कला मे इन विस्तारक्षम रचनारूपी महत्वपूर्ण 'पूर्वाध' का भविष्य में और भी संशोधन कार्य होना जरूर संभव है और ऐसा हुआ तो वह तबला क्षेत्र में बडे ही गौरव की बात सिद्ध होगी। तथापी, इस शोधप्रबंध की यहीं सही रूप में सफलता होगी, ऐसा शोधार्थी का आत्मविश्वास के साथ मानना हैं। प्रस्तुत शोधकार्य तबलाक्षेत्र में सर्वांगीण रूपसे आधारभूत बनते हुए, तबले की इन महत्वपूर्ण 'विस्तारक्षम रचनाओं'के अखंड अध्ययन प्रक्रिया का ऐसा ही विस्तार होते हुए इनका प्रचार और प्रसार हो, यही शोधार्थी का विश्वास हैं।

*****